हमारे ज्योतिर्धर आचार्य

—देवेन्द्रमुनि, शास्त्री

आचार्यश्री तुलसीदासजी महाराज

इस विराट विश्व में हजारों प्राणी प्रतिदिन जन्म लेते हैं और प्रतिदिन मरते हैं, किन्तु उन्हें कोई भी याद नहीं करता। जिनका जीवन आत्महित के साथ जगत्‌हित के लिए समर्पित होता है, आत्मविकास के साथ जन-जीवन के लिए क्रियाशील होता है, वह जीवन विश्व में सार्थक जीवन गिना जाता है। जिन्दगी का अर्थ है विश्व की अन्धकाराच्छन्न काल-रात्रि में सुख, सद्‌भाव और स्नेह का आलोक फैलाना। सन्त अपने लिए ही नहीं विश्व के लिए जीता है। भगवान पार्श्वनाथ के चरित्रकार ने[1] भगवान पार्श्व की परम कारुणिक भावना का चित्रण करते हुए लिखा है—ये साधुजन स्वभाव से ही परहित करने में सदा तत्पर रहते हैं। चन्दन की तरह अपना शरीर छिलाकर सुगन्ध फैलाते हैं, अगरबत्ती की तरह जलकर वातावरण को मधुर सौरभ से महकाते हैं, मोमबत्ती की तरह अपनी देह को नष्ट कर अन्धकार से अन्तिम क्षण तक संघर्ष करते रहते हैं, अपने परिश्रम की बूँदों से मिट्टी को सींचकर कल्पवृक्ष उत्पन्न करते हैं। वे जीते-जागते कल्पवृक्ष हैं। जिनदासगणी महत्तर ने[2] श्रमण-जीवन की महिमा उत्कीर्तन करते हुए लिखा है—सन्तजन विविध जाति और कुलों में उत्पन्न हुए, पृथ्वी के चलते-फिरते कल्पवृक्ष हैं। वह कल्पवृक्ष भौतिक कामनाएँ पूर्ण करता है तो यह कल्पवृक्ष आध्यात्मिक वैभव की वृद्धि करता है। श्रीमद् भागवत[3] में कर्मयोगी श्रीकृष्ण कहते हैं—सन्तजन ही सबसे बड़े देवता हैं। वे ही समस्त जगत् के बन्धु हैं, वे जगत् के आत्मा हैं, और सत्य-तथ्य तो यही है मेरे में (भगवान में) और सन्त में कोई अन्तर नहीं है। गुरु अर्जुनदेव[4] ने लिखा है—सन्त धर्म की जीती-जागती मूर्ति हैं, तप और तेज के प्रज्वलित पिण्ड हैं और करुणा के अन्तःस्रोत हैं।

सन्त-जीवन के परमानन्द का मूल स्रोत है समता। जब तक मन में राग-द्वेष के विकल्प और संकल्प उद्‌बुद्ध होते रहते हैं, कषाय की लहरें तंरगित होती रहती हैं, मन अशान्ति की आग में झुलसता रहता है। सन्त समता के शीतल जल से कषायों की आग को शान्त करता है। वह क्रोध नहीं करता, किन्तु सदा प्रसन्न रहता है।[5] वह चन्द्र के समान सौम्य,[6] और विराट सागर के समान गहन-गम्भीर[7] होता है। यदि उस पर विरोधी असज्जन तेज कुल्हाड़ी का प्रहार करता है या भक्त सज्जन शीतल चन्दन का लेप करता है तो वह दोनों स्थितियों में सम रहता है[8] चाहे बसौले की मार हो या चन्दन का उपहार हो, मधुर मिष्ठान्न की मनुहार हो या घृणा-तिरस्कार की दुत्कार हो उसके अन्तर्मानस पर कोई असर नहीं होता। वह द्वन्द्वातीत और विकल्पातीत होकर साधना के महा-पथ पर बढ़ता रहता है।

महामहिम आचार्यप्रवर श्री तुलसीदासजी महाराज इसीप्रकार के सन्तरत्न थे। आपश्री का जन्म मेवाड़ के जूनिया ग्राम में हुआ था। आपके पूज्य पिताश्री का नाम फकीरचन्दजी था और माता का नाम फूलाबाई था। आपके पूज्य पिताश्री अग्रवाल समाज के प्रमुख नेता थे। आपका जन्म सं० १७४३ आश्विन शुक्ला अष्टमी सोमवार को हुआ था। **'होनहार विरवान के होत चीकने पात'** उक्ति के अनुसार आपके जीवन में अनेक विशेषताएँ थीं। आपकी बुद्धि बहुत ही तीक्ष्ण थी। किन्तु साथ ही पूर्वभवों के संस्कारों के कारण आपके मन में संसार के भौतिक पदार्थों के प्रति आकर्षण नहीं था। आपके अन्तर्मानस की विरक्त वृत्ति को निहारकर माता और पिता के मन में यह विचार उत्पन्न हुए कि कहीं यह साधु न बन जाय। अतः पानी आने के पूर्व ही पाल बाँधनी चाहिए—इसलिए पन्द्रह वर्ष की किशोरावस्था में ही इनका पाणिग्रहण एक रूपवती कन्या के साथ कर दिया गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु जिनका उपादान शुद्ध होता है, उन्हें निमित्त मिल ही जाता है और अनुकूल निमित्त मिलते ही वह दबी हुई ज्योति प्रज्वलित हो जाती है। तुलसीदासजी का पाणिग्रहण होने पर भी उनका मन संसार के भौतिक पदार्थों में नहीं लगा था। आचार्यसम्राट् अमरसिंहजी महाराज विचरण करते हुए जूनिया ग्राम में पधारे। आचार्यप्रवर के प्रवचन को श्रवणकर उनके अन्तर्मानस में वैराग्य भावना उद्‌बुद्ध हुई। विक्रम संवत् १७६३ की पौष बदी ग्यारस को बीस वर्ष की भरी जवानी में उन्होंने संयम साधना के कठोर कंटकाकीर्ण महामार्ग को अपनाया। माता-पिता, पत्नी और परिजनों के अति आग्रह करने पर भी वे विचलित नहीं हुए और संयम को ग्रहण कर एक आदर्श उपस्थित किया।

संयम ग्रहण करने के पश्चात् आपश्री ने आचार्यश्री के नेतृत्व में आगम व दर्शन साहित्य का गहरा अध्ययन किया। अन्त में आपश्री को योग्यतम समझकर आचार्यश्री अमरसिंहजी महाराज ने आपको अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। आपश्री ने राजस्थान के विविध अंचलों में विचरण कर स्थानकवासी धर्म की अत्यधिक प्रभावना की। सैकड़ों व्यक्तियों को जो मिथ्यात्व के गहन अन्धकार में भटक रहे थे उन्हें सम्यक्त्व की ज्योति के दर्शन कराये। हजारों व्यक्तियों को श्रावकधर्म प्रदान किया और अनेकों को श्रमणधर्म में दीक्षित किया। अन्त में जोधपुर में वृद्धावस्था के कारण कुछ दिनों तक स्थानापन्न विराजे और पैंतालीस दिन का सन्थारा कर वि० सं० १८३० के भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को आप स्वर्गस्थ हुए।

आपश्री बहुत ही प्रभावशाली और तेजस्वी आचार्य थे। आचार्यसम्राट् श्री अमरसिंहजी महाराज के शिष्यों में आप अग्रगण्य थे। आचार्यप्रवर जीवन के अन्तिम क्षणों तक जाग्रत रहे, जाग्रत मृत्यु विशिष्ट साधकों को ही उपलब्ध होती है जो उनके तेजस्वी जीवन की प्रतीक है। उनका जीवन युग-युग तक विश्व को प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।

आचार्यप्रवर श्री सुजानमलजी महाराज

महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने एक रूपक प्रस्तुत किया है कि एक बार जलती हुई लकड़ी को निहार कर हरी लकड़ी की आँखों में आँसू आ गये। उसके अन्तर्मन की व्यथा इस रूप में व्यक्त हुई—इसमें कितना तेज भरा पड़ा है। अन्धकार बेचारा लज्जा से एक ओर खिसक गया है, चारों ओर ज्योति ही ज्योति जगमगा रही है। परमात्मा! ऐसा तेज मुझे कब प्राप्त होगा।

जलते हुए अंगारे ने उत्तर दिया—बहन, चेष्टाविहीन इस व्यर्थ वासना से पीड़ित होने में क्या लाभ है? हमें जो कुछ भी प्राप्त हुआ है वह तप करके प्राप्त हुआ है। क्या वह तुम्हारे लिए यों ही टपक पड़ेगा?

प्रत्येक आत्मा में दिव्य ज्योति छिपी हुई है। उसे प्रगट करने के लिए अखण्ड साधना करनी होती है। कवीन्द्र-रवीन्द्र की भाषा में अंगारे ने वही उत्तर दिया है कि बिना तपे कोई ज्योति नहीं बनता और बिना खपे कोई मोती नहीं बनता। ज्योति बनने के लिए स्वयं को तपाना होता है, खपाना होता है, विश्व के जितने भी महापुरुष हुए उन्होंने अपने जीवन को साधना की भट्टी में तपाकर निखारा है। आचार्यप्रवर श्री सुजानमल जी महाराज का जीवन ऐसा ही जीवन था। उन्होंने उत्कृष्ट साधना कर एवं तप की आराधना कर जीवन को मांजा था और स्वर्ण के समान उसे निखारा था।

सुजानमलजी महाराज आचार्यसम्राट श्री अमरसिंहजी महाराज के तृतीय पट्टधर थे। आप तुलसीदास जी महाराज के शिष्य थे। आपका जन्म राजस्थान के सरवाड ग्राम में विक्रम संवत् १८०४ भाद्रपद कृष्णा चौथ को हुआ था। आपश्री के पूज्य पिताश्री का नाम विजयचन्द जी भण्डारी और माता का नाम याजू बाई था। आपके पूज्य पिताश्री और मातेश्वरी दोनों ही सात्विक प्रकृति के धनी थे। दोनों में धर्म के प्रति गहरी निष्ठा थी। संसार में रह करके भी जल-कमलवत् वे निर्लिप्त थे। यही कारण है कि माता-पिता के सुसंस्कार पुत्र पर भी गिरे और उसके जीवन में भी त्याग-वैराग्य के फूल महकने लगे। आचार्यप्रवर तुलसीदासजी महाराज विविध स्थानों पर धर्म की ज्योति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जागृत करते हुए जब सरवाड़ पधारे तब आचार्यश्री के त्याग-वैराग्य से छलछलाते हुए प्रवचनों को सुनकर अपनी मातेश्वरी याजूबाई तथा भगिनी के साथ आचार्य प्रवर के सान्निध्य में वि० सं० १८१८ की चैत्त शुक्ला ग्यारस सोमवार को आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। आचार्यश्री के सान्निध्य में रहकर आगम का गहराई से अध्ययन किया। आपकी प्रवचन-कला बहुत ही चित्ताकर्षक थी, जो श्रोताओं के दिल और दिमाग को आकर्षित कर लेती थी। आपने मेवाड़, मारवाड़, और मध्यप्रदेश में परिभ्रमण कर हजारों भव्य-प्राणियों को प्रतिबोध प्रदान किया। आचार्य प्रवर तुलसीदास जी महाराज ने आपको सुयोग्य शिष्य समझकर आचार्य पद प्रदान किया। आपने अपने आचार्य काल में धर्म की ज्योति जागृत की। अनेकों व्यक्तियों ने श्रामण्य प्रव्रज्या ग्रहण कर आपका शिष्यत्व स्वीकार किया। आप जहाँ भी पधारे वहाँ अपने यशःसौरभ से जन-जन के मन को मुग्ध किया।

विहार करते हुए आचार्यश्री किशनगढ़ पधारे। आचार्यश्री के प्रवचनों में जनता उमड़ पड़ी। किसे ज्ञात था कि आचार्यश्री लघुवय में ही संसार से बिदा हो जायेंगे। शरीर में व्याधि उत्पन्न होने पर इसके उपचार का प्रयास किया गया। श्रद्धालुगण सेवा में प्रस्तुत था। उपचार करने के बावजूद भी व्याधि शैतान की आँत की तरह बढ़ रही थी। शरीर एक था, व्याधियाँ अनेक थीं। रोगों ने ऐसे महापुरुष पर आक्रमण किया था जिसकी वेदना केवल उन्हीं को ही नहीं अपितु अनगिनत श्रद्धालुओं को वह अभिभूत कर रही थी। रोगी वीर सेनानी की भाँति रोगों से जूझ रहा था, किन्तु उसके श्रद्धालु उस युद्ध में उसका साथ नहीं दे पा रहे थे। वे आचार्य के प्रति मोह से ग्रसित थे।

अन्त में आचार्यश्री ने देखा मेरा शरीर अब रोगों का घर बन चुका है, मुझे सावधानी से ही इस शरीर का त्याग करना चाहिए। यदि शरीर ने मुझे छोड़ा, इसमें बहादुरी नहीं है। उन्होंने प्रसन्नता से चतुर्विध संघ की साक्षी से अनशन व्रत ग्रहण किया और वि० सं० १८४९ की ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी मंगलवार को वे स्वर्गस्थ हुए।

युवा आचार्य के स्वर्गवास से समाज ने भारी आघात का अनुभव किया। किन्तु क्रूर काल के सामने किसका जोर चला है? आचार्यश्री का भौतिक देह नष्ट हो गया किन्तु वे यशःशरीर से आज भी जीवित हैं और भविष्य में भी सदा जीवित रहेंगे।

आचार्यश्री जीतमलजी महाराज : व्यक्तित्व दर्शन

समय-समय पर विश्व के क्षितिज पर ऐसे विशिष्ट व्यक्तियों का उदय होता है जो अपने अलौकिक व्यक्तित्व और कृतित्व से जन-जन का पथ-प्रदर्शन करते हैं। भूले भटके जीवन राहियों को मार्ग दर्शन देते हैं। उन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों की शृंखला में आचार्य प्रवर श्री जीतमलजी महाराज का भी नाम आता है। वे एक मनीषी और मनस्वी सन्त थे। उन्होंने जैन साहित्य और कला के क्षेत्र में एक अद्वितीय कीर्तिमान स्थापित किया। जो आज भी चिन्तकों के लिए प्रेरणादायी है।

आपश्री का जन्म हाडोती राज्य के अन्तर्गत रामपुरा में हुआ था। आपश्री के पिता का नाम सुजानमल जी और माता का नाम सुभद्रा देवी था। आपका जन्म कार्तिक शुक्ला पंचमी वि० सं० १८२६ में हुआ था। माता-पिता के संस्कारी जीवन का असर आपके जीवन पर पड़ा था।

विक्रम संवत् १८३३ में आचार्य प्रवर सुजानमल जी महाराज का रामपुरा में पदार्पण हुआ। उनके पावन प्रवचनों को सुनकर सुभद्रादेवी को और कुमार जीतमल के अन्तर्मानस में वैराग्य भावना उद्‌बुद्ध हुई। पुत्र ने अपने हृदय की बात माँ को कही। माँ मेरे पिताजी का नाम और आचार्यश्री का नाम एक ही है। आचार्य श्री का उपदेश तो ऐसा है मानो अमृत रस हो। उस अमृत रस का पान चाहे कितना भी किया जाय, तृप्ति नहीं होती। पर एक अद्‌भुत आनन्द की उपलब्धि होती है। आचार्य प्रवर के उपदेश को सुनने के पश्चात् मेरे मन में ये विचार प्रतिपल प्रतिक्षण समुत्पन्न हो रहे हैं कि मानव का जीवन कितना अमूल्य है जिसको प्राप्त करने के लिए देवता भी छटपटाते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। क्या हम उसे यों ही बरबाद कर दें ? यह तो निश्चित है कि एक दिन जो व्यक्ति जन्मा है उसे अवश्य ही मरना है, जो फूल खिलता है वह अवश्य ही मुरझाता है। जो सूर्य उदय होता है वह अवश्य ही अस्त होता है। किन्तु हम कब मरेंगे यह निश्चित नहीं है। अतः क्षण मात्र का भी प्रमाद न कर साधना करनी चाहिए। बोल माँ, क्या मेरा कथन सत्य है न ?

हाँ बेटा, आचार्यश्री के उपदेश में पता नहीं क्या जादू है। तेरी तरह मेरे मन में भी ये विचार पैदा होते हैं। मैं क्यों संसार में फँस गयीं ? अब तो घर-गृहस्थी का सारा भार मेरे पर है। मैं उसे कैसे छोड़ सकती हूँ। तू तो बच्चा है। अभी तेरी उम्र ही क्या है ? अभी तो तू खूब खेल-कूद और मौज मजा कर।

'माँ, तुम्हें अब अनुभव हुआ है कि संसार असार है। यदि पहले न फँसती तो अच्छा था। फिर माँ तुम मुझे क्यों फंसाना चाहती हो ? लगता है तुम्हारा मोह का परदा अभी तक टूटा नहीं। आचार्यश्री ने आज ही बताया था न कि अतिमुक्तकुमार छह वर्ष की उम्र में साधु बने थे। वज्रस्वामी भी बहुत लघुवय में साधु बन गये थे तो फिर मैं साधु क्यों नहीं बन सकता ? आत्मा तो न बालक है, न वृद्ध है, न युवा है। उसमें अनन्त शक्ति है। यदि उस शक्ति का विकास करे तो वह नर से नारायण बन सकता है। मानव से महामानव बन सकता है, और इन्सान से भगवान बन सकता है। फिर माँ हम साधु बनकर अपनी आत्मा का विकास क्यों नहीं कर सकते ? अतः माँ, तुम मुझे अनुमति प्रदान करो तो मैं साधु बनना चाहता हूँ।

माता ने अपने लाड़ले का सिर चूमते हुए कहा—बेटा, अभी तो तू बहुत ही छोटा है। तो साधु बनकर कैसे चलेगा ? साधु बनना कोई हंसी-मजाक का खेल नहीं है। मोम के दाँतों से लोहे के चने चबाने जैसा कठिन कार्य है। तलवार की धार पर चलना सरल है, किन्तु साधना के कठोर कंटकाकीर्ण पथ पर चलना बड़ा ही कठिन है। साधु बनने के पश्चात् केशों का लुंचन करना पड़ता है। भूख और प्यास सहन करनी पड़ती है। अतः जितना कहना सरल है उतना ही कठिन है साधना का मार्ग।

'माँ तुम तो वीरांगना हो। तुम मुझे समय-समय पर वीरता की प्रेरणा देती रही। तुमने मुझे इतिहास की वे घटनाएँ सुनायी हैं कि वीर बालक क्या नहीं कर सकता ? वह आकाश के तारे तोड़ सकता है। मैं तुम्हारा पुत्र हूँ, दीक्षा लेकर अपने जीवन को ही नहीं किन्तु जैन धर्म को भी चमकाऊँगा। तुम्हारे दूध की कीर्ति बढ़ाऊँगा।'

अच्छा बेटा ! मुझे विश्वास है कि तेरी बुद्धि बहुत ही तीक्ष्ण है। तेरे में प्रतिभा है। तू अवश्य ही जैन धर्म की प्रभावना करेगा। यदि तू दीक्षा लेगा तो मैं भी तेरे साथ ही दीक्षा लूँगी। मैं फिर संसार में नहीं रहूँगी। किन्तु बेटा, पहले तेरे पिता की अनुमति लेना आवश्यक है। बिना उनकी अनुमति के हम दोनों साधु नहीं बन सकते।

बालक जीतमल पिता के पास पहुँचा और उसने अपने हृदय की बात पिता के समक्ष प्रस्तुत की। पिता ने मुस्कराते हुए कहा—'वत्स, तुझे पता नहीं है कि साधु की चर्या कितनी कठोर होती है। तेरा शरीर मक्खन की तरह मुलायम है। तू उन कष्टों को कदापि सहन नहीं कर सकता। तथापि मैं श्रावक होने के नाते साधु बनने के लिए इन्कार नहीं करता। किन्तु बारह महीने तक मैं तुम्हारे वैराग्य की परीक्षा लूंगा और यदि उन कसौटियों पर तुम खरे उतर गये तो तुम्हें सहर्ष अनुमति दे दूंगा।'

श्रेष्ठि सुजानमलजी ने विविध दृष्टियों से पुत्र की परीक्षा ली। जब उन्हें यह विश्वास हो गया कि मेरा पुत्र वय की दृष्टि से भले ही छोटा है, किन्तु इसमें तीक्ष्ण प्रतिभा है। यह श्रमण बनकर जैनधर्म की ज्योति को जागृत करेगा। इसकी हस्तरेखाएँ यह बता रही हैं कि यह कभी भी गृहस्थाश्रम में नहीं रह सकता। यह एक ज्योतिर्धर आचार्य बनेगा। मैं स्वयं दीक्षित नहीं हो सकता तो इसे क्यों रोकूँ। उन्होंने पुत्र व पत्नी को सहर्ष दीक्षा की अनुमति प्रदान की। गर्भ के सवा नौ मास मिलने से बालक की उम्र नौ वर्ष की हो गयी थी। अतः आचार्य प्रवर सुजानमलजी महाराज ने योग्य समझकर १८३४ में माँ के साथ बालक जीतमल को दीक्षा प्रदान की और उनका नाम जीतमुनि रख दिया गया।

बालक जीत मुनि ने गम्भीर अध्ययन प्रारम्भ किया। संस्कृत, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं का अध्ययन किया। आगम, दर्शन, न्याय, व्याकरण, ज्योतिष, मंत्र-तन्त्र और आयुर्वेद शास्त्र का भी गहराई से अध्ययन किया। उनकी लिपि बहुत ही सुन्दर थी। वे दोनों हाथों और दोनों पैरों से एक साथ लिख सकते थे। प्राचीन प्रशस्तियों के आधार से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने तेरह हजार ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ की थीं। स्थानकवासी परम्परामान्य बत्तीस आगमों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को उन्होंने बत्तीस बार लिखा था। आपके द्वारा लिखित एक आगम बत्तीसी जोधपुर के अमर जैन ज्ञान भण्डार में उपलब्ध है और कुछ आगम उदयपुर तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल, के संग्रहालय में हैं। आपके द्वारा लिखित नौ आगम बत्तीसी आपके सम्प्रदाय की साध्वियाँ चम्पाजी जो अजमेर में लाखन कोठडी में अवस्थित (चम्पाजी का स्थानक) स्थानक में स्थानापन्न थीं, उनके पास रखी गयी थीं। पर परिताप है कि स्थानकवासी समाज की साहित्य के प्रति उपेक्षा होने के कारण वे नौ बत्तीसियाँ और हजारों ग्रन्थ कहाँ चले गये आज उसका कुछ भी पता नहीं है। जैन श्रमण होने के नाते से वह सारा साहित्य जो आपने लिखा था वह गृहस्थों के नेश्राय में कर देने से और उनकी, साहित्य के प्रति रुचि न होने से नष्ट हो गया है। उन्होंने उर्दू-फारसी में भी ग्रन्थ लिखे थे, उसमें से एक ग्रन्थ अभी विद्यमान है। एक फारसी के भाषा-विशेषज्ञ को हमने वह ग्रन्थ बताया था। उसने कहा यह बड़ा ही अद्भुत ग्रन्थ है इस ग्रन्थ में महाराजश्री ने अपने अनुभूत अद्भुत प्रयोग लिखे हैं। इस ग्रन्थ को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि महाराजश्री का ज्ञान बहुत ही गहरा था। एक जैन श्रमण विविध विषयों में कितनी तलस्पर्शी जानकारी रख सकता है इससे स्पष्ट होता है। यह ग्रन्थ ज्ञान का अद्भुत भण्डार है।

आप कुशल कवि भी थे। आपने अनेक ग्रन्थ कविता में भी बनाये हैं। चन्द्रकलारास यह आपकी एक महत्वपूर्ण रचना है जो आपश्री के हाथ से लिखा हुआ है। उसके अठारह पन्ने हैं। प्रत्येक पन्ने में सत्रह पंक्तियाँ हैं और सूक्ष्माक्षर हैं। ग्रन्थ में लेखक ने अपना नाम नहीं दिया है और नाम न देने का कारण बताते हुए उसने लिखा है—

"हूँ मतिमन्द बालकवत कीधो, हुकम सामियां दीधो रे।
लोपी जे मर्याद प्रसिद्धो, मिच्छामि दुक्कडं लीधो रे॥

अर्थात्, आचार्यश्री अमरसिंहजी महाराज की परम्परा में उस समय ऐसा नियम बनाया गया था कि कविता आदि न लिखी जाय, क्योंकि कवि को कभी-कभी अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन भी करना पड़ता है और उस वर्णन से सत्य महाव्रत में दोष लगने की संभावना है। अतः कवि ने कविता लिख करके भी अपना नाम नहीं दिया। सम्भव है जीतमल जी महाराज से पूर्व भी आचार्य प्रवरों ने तथा अन्य मुनिगणों ने कविताएँ आदि लिखी हों पर नाम न देने से यह पता नहीं चलता कि ये कविताएँ किन की बनाई हुई हैं।

आपका द्वितीय ग्रन्थ शंखनृप की चौपाई है। यह चार खण्डों में विभक्त है। इसमें छत्तीस ढालें हैं और बाईस पन्ने हैं। ग्रन्थ के अन्त में प्रशस्ति में कवि ने लिखा है—

सम्मत अठारे चोपने, जेठ वद बारस दिन में रे।
नगर बालोतरो भारी, रिष जीत भणे सुखकारी रे॥

आपकी तृतीय रचना कौणिक संग्राम प्रबन्ध है। इस प्रबन्ध में सत्तावीस ढाले हैं और दस पन्ने हैं और प्रत्येक पन्ने में चौदह पंक्तियाँ हैं और सूक्ष्माक्षर हैं। उसके अन्त में प्रशस्ति में लिखा है—

एम सुणी ने चेतजाए, लोभ थकी मन वाल।
सेंठा रह जो सन्तोष में ए, भयो जीत रसाल॥

एक बार आचार्यश्री जीतमलजी महाराज जोधपुर राज्य के रोइट ग्राम में विराज रहे थे। उस समय साम्प्रदायिक वातावरण था और उस युग में एक दूसरे की आलोचना-प्रत्यालोचना की जाती थी। उस समय के ग्रन्थ इस बात की साक्षी हैं—रात्रि का समय था। तेरह पन्थ के चतुर्थ आचार्य जीतमल जी भी वहाँ आये हुए थे और आपश्री भी वहाँ पर विराज रहे थे। आपने उस समय उनके दयादान के विरोध में एक लघु-काव्य का सृजन किया जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

छांड रे जीव पत पात पाखण्डनी, समकीत रहत नहीं मूल बाकी।
देव गुरु धर्म उत्थापियो पापियां, नागडा दीधी छे खोय नाकी॥
साधु मुख सांभली वाणी सिद्धान्त री सावण में जवासो जेम सूखे।
नाम चर्चा रो लिया थका नागडा, सियालिया जेम दिन रात रुके॥

आपकी पाँचवीं रचना पूज्य गुणमाला प्राप्त होती है। आचार्यश्री तुलसीदासजी महाराज के गुणों का उत्कीर्तन करते हुए अन्त में लिखा है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समत अठारें वर्ष गुणचासे, महावद आठम भारी जी।
शहर जोधाणे जोडी जुगत सु, थे सुण जो सहु नर नारी जी॥

आचार्यश्री सुजानमल जी महाराज के गुणों पर प्रकाश डालते हुए भी अन्त में उन्होंने लिखा है—

म्हारा गुरां रा गुण कहूं किस्या, म्हारा दिल में तो म्हारा गुरु जी बस्या।
जोडी जुगति सु ढाल हरसोर ग्रामी, मनें वल्लभ लागे सुजाण जी स्वामी॥
संमत अठारे वर्ष पचासे, पूज जीतमल तो इम भाषे।
वद फागुण शुक्र तिथ छट्ठ पामी॥ मनें वल्लभ लागे.....॥

आचार्यश्री जीतमल जी महाराज के द्वारा लिखित रचनाएँ मुझे जितनी भी उपलब्ध हो सकी हैं वे सारी रचनाएँ मैंने 'अणविन्ध्या-मोती' के नाम से संग्रह की हैं जो अभी तक अप्रकाशित हैं। इसके अतिरिक्त भी आपकी अनेक रचनाएँ थीं और उनकी संख्या पचास-साठ ग्रन्थों की थी। ऐसा मुझे एक प्राचीन पत्र में उल्लेख मिला है। किन्तु वे सारी रचनाएँ आज मिलती नहीं हैं।

आपश्री कुशल चित्रकार भी थे। आपने संग्रहणी अढाई-द्वीप का नक्शा, त्रसनाडी का नक्शा, केशी-गौतम की चर्चा, परदेशी राजा के स्वर्ग का मनोहारी दृश्य, द्वारिका दृश्य, भगवान अरिष्टनेमी की बरात, स्वर्ग और नरक आदि विविध विषयों पर लगभग दो हजार चित्र आपने बनाये हैं। सूर्य पल्ली आपकी बहुत ही उत्कृष्ट कलाकृति है जिसे देखकर भारत के प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद और प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू मुग्ध हो गये थे। आपने सूई की नोंक से काटकर कटिंग की है, वह कटिंग अत्यन्त चित्ताकर्षक है। साथ ही आपने कटिंगों में श्लोक आदि भी लिखे हैं। आपका एक कटिंग तो बड़ा ही अद्भुत और अनूठा है। उसमें आपने इस प्रकार अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है कि एक पन्ना होने पर भी आगे और पीछे पृथक्-पृथक् श्लोक पढ़े जाते हैं। भारत के मूर्धन्य मनीषी इसे विश्व का एक महान आश्चर्य मानते हैं।

एक बार आपश्री अपने शिष्यों के साथ संवत १८७१ में जोधपुर विराज रहे थे। उस समय आपके प्रवचनों की अत्यधिक धूम थी। जैन-अजैन सभी आपके प्रवचनों में उपस्थित होते थे और प्रवचनों को सुनकर मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। कुछ ईर्ष्यालु विपक्षियों को आचार्यश्री का बढ़ता हुआ तेज सहन नहीं हुआ' उन्होंने आचार्यश्री से कहा—आप कहते हैं कि पानी की एक बूंद में असंख्य जीव होते हैं, कृपया हमें प्रत्यक्ष बतायें। आचार्यश्री ने विविध युक्तियाँ देकर उन्हें समझाने का प्रयास किया, किन्तु वे कहाँ समझने वाले थे ? उनके अन्तर्मानस में तो ईर्ष्याग्नि जल रही थी। वे आचार्य श्री का अपमान करने हेतु तत्पर थे। उन्होंने उस समय जोधपुर के नरेश मानसिंह के पास जाकर निवेदन किया कि हुजूर, आपके राज्य में जैन-साधु मिथ्या प्रचार करते हैं। वे कहते हैं कि जल की एक बूंद में असंख्य जीव हैं। आप जरा उन्हें पूछे तो सही कि कुछ जीव निकालकर हमें बतावें। इसप्रकार मिथ्या प्रचार कर जन-मानस को गुमराह करना कितना अनुचित है। आपश्री को चाहिए कि उस पर प्रतिबन्ध लगाया जाय।

राजा मानसिंह एक प्रतिभा सम्पन्न राजा थे। वे कवि थे, विचारक थे। उन्होंने महाराजश्री के पास सन्देश भिजवाया। महाराजश्री ने उत्तर में कहा—जिन्हें जिज्ञासा है वे स्वयं आकर जिज्ञासाओं का समाधान कर सकते हैं। जिज्ञासु राजा आचार्यश्री की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने औपचारिक वार्तालाप के पश्चात् आचार्यश्री से पूछा—

आचार्य-प्रवर, जैन आगमों में हजारों बातें ऐसी हैं जो बुद्धिगम्य नहीं हैं और पागलों के प्रलाप-सी प्रतीत होती हैं। यही कारण है बनियों के अतिरिक्त जैन धर्म को कोई नहीं मानता।

आचार्यश्री ने मधुर मुस्कान बिखेरते हुए कहा—राजन्, ! आपका यह मानना भ्रांतिपूर्ण है। स्वयं भगवान महावीर क्षत्रिय थे। वे सम्राट-सिद्धार्थ के पुत्र थे। उनके नाना चेटक गणतन्त्र के अधिपति थे। उनके शिष्य उस युग के जाने-माने हुए विद्वान् थे और शास्त्रार्थ करने में निपुण थे। भगवान महावीर के अनेक राजागण उपासक थे। आठ राजाओं ने महावीर के पास प्रव्रज्या ग्रहण कर जैन धर्म की प्रभावना की और अनेक राजकुमारों ने, महारानियों ने भी संयम स्वीकार किया था और सम्राट श्रेणिक जैसे अनेक राजागण भी महावीर के परम भक्त थे। उसके पश्चात् भी सम्राट चन्द्रगुप्त ने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। कुमारपाल जैसे प्रभावी राजा भी जैन धर्म के दिव्य प्रभाव से प्रभावित थे। अतः आपका यह कहना कि जैन धर्म बनियों का धर्म है यह उचित नहीं है। आचार्य भद्रबाहु, संमतभद्र, उमास्वाती सिद्धसेन दिवाकर, हेमचन्द्र, अभयदेव, हरिभद्र, यशोविजय आदि अनेकों ज्योतिर्धर आचार्य हुए हैं जिन्होंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आचार्य श्री
जीतमल जी महाराज
की
हस्तकला के
कुछ
अद्‌भुत चित्र

द्वारिका नगरी, वासुदेव श्री कृष्ण, भगवान नेमिनाथ के समक्ष धर्म देशना सुनने आना, और द्वैपायन ऋषि के समक्ष जाना—
चार दृश्यों का चित्रण।

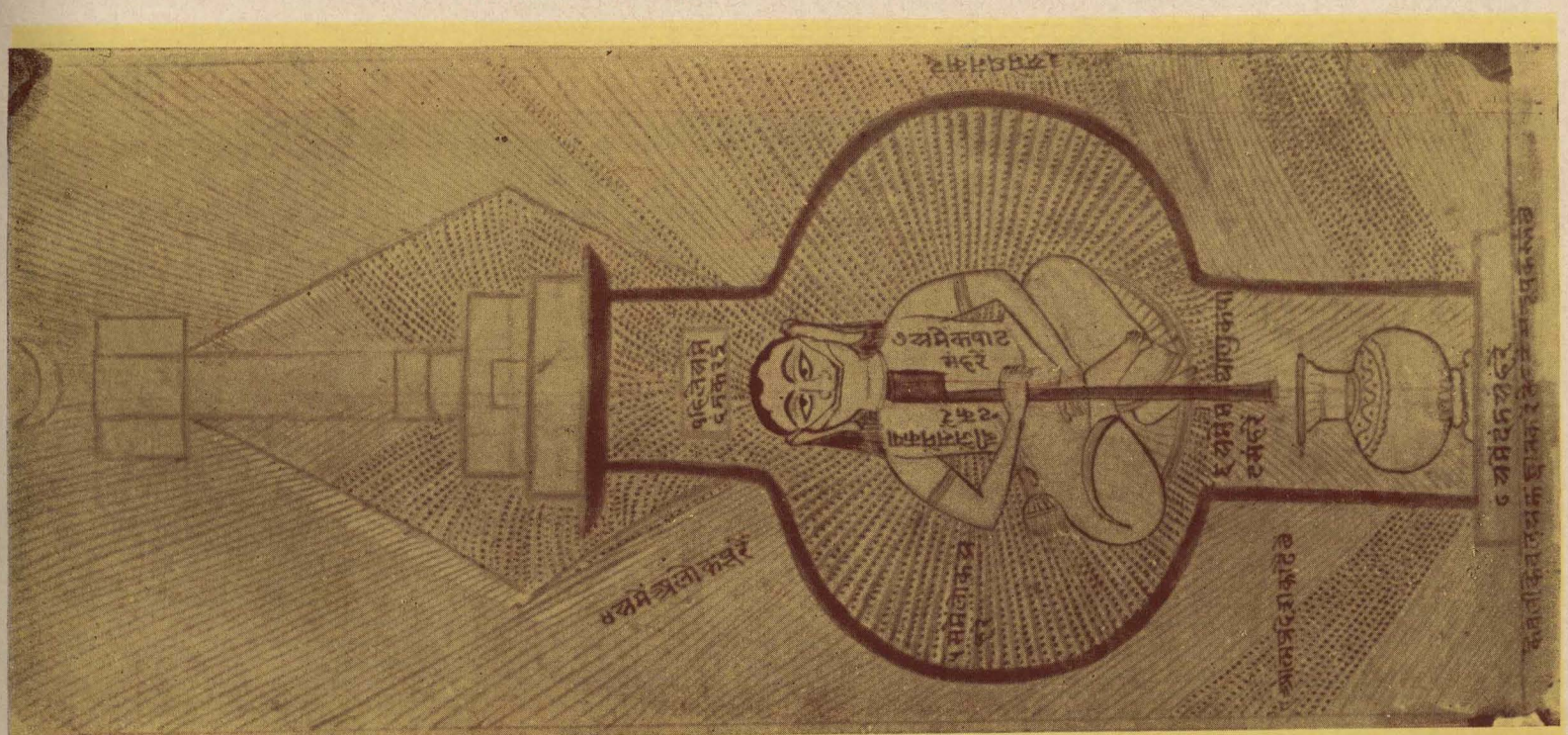

जब केवली समुद्‌घात होती हैं तब आत्म-प्रदेश लोक में प्रसारित होते हैं। उस स्थिति का चित्रण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानतुंग-मानवती कथा से सम्बन्धित चित्र ।
राजा मानतुंग योगिनी वेषधारी मानवती को नमस्कार कर रहा है ।

तीर्थंकरों की माता द्वारा देखे जाने वाले चौंदह महास्वप्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश में हजारों ग्रन्थों की रचना की। इसलिए जैन धर्म एक वैज्ञानिक धर्म है। जैन आगम साहित्य में प्रत्येक पदार्थ का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। राजन् ! आपने आगम साहित्य को पढ़ा नहीं है। अतः आपको ऐसा भ्रम हो गया है कि जैन आगमों में अनर्गल बातें हैं। वस्तुतः जैन आगमों में एक भी बात ऐसी नहीं है जो असंगत हो।

राजा मानसिंह ने कहा—

आचार्य प्रवर ! आप कहते हैं कि आगम साहित्य में अनर्गल बातें नहीं है, तो देखिए जैन आगमों में बताया गया है कि जल की एक बूंद में असंख्य जीव हैं। यह कितनी बड़ी गप है। यदि कोई विद्वान् इसे सुने तो वह जैन आगमों का उपहास किये बिना नहीं रह सकता।

आचार्यश्री ने पुनः गंभीर वाणी में कहा—

राजन् ! जिसकी दृष्टि जितनी तीक्ष्ण होगी वह उतनी सूक्ष्म वस्तु देख सकता है। तीर्थंकर सर्वज्ञ सर्वदर्शी होते हैं। उनका कथन कभी मिथ्या नहीं हो सकता। उन्होंने जो कहा है वह अपने प्रत्यक्ष ज्ञान से देखकर कहा है।

मानसिंह—आचार्य प्रवर ! आपको ताज्जुब होगा कि हमारे वैदिक परम्परा के शास्त्रों में इस प्रकार की कहीं पर भी गप्पे नहीं हैं जैसे कि जैन शास्त्रों में हैं।

आचार्यश्री ने कहा—

राजन् ! किसी भी मत और सम्प्रदाय के सम्बन्ध में खण्डन करना हमारी नीति नहीं है। हम तो हंस की तरह जहाँ भी सद्गुण होते हैं वहाँ ग्रहण कर लेते हैं, पर आपने जो कहा वह उचित नहीं है। आप कहते हैं इसीलिए मैं कहता हूँ कि वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में भी आपकी दृष्टि से अनेक गप्पें हैं। उदाहरण स्वरूप एक गाय की पूंछ में तैन्तीस कोटि देवताओं का निवास मानते हैं, वह कैसे सम्भव हो सकता है। क्या, आपने गाय की पूंछ में एकाध देवता भी कभी देखा है ?

राजा मानसिंह—जैसे जैन शास्त्रों में असम्बद्ध बातें भरी पड़ी हैं, वैसे ही वैदिक परम्परा के शास्त्रों में भी हैं, मुझे दोनों ही बातें मान्य नहीं हैं। मैं तो राजा हूँ जो न्याय युक्त बात होती है उसे ही मैं स्वीकार करता हूँ, मिथ्या बातें नहीं मानता।

आचार्यश्री—राजन् ! आपका चिन्तन अपूर्ण है। मैं सप्रमाण सिद्ध कर सकता हूँ कि जैन आगम साहित्य में एक बात भी ऐसी नहीं है जिसे गप कहा जाय। हम भी लकीर के फकीर नहीं हैं। भगवान महावीर ने तो स्पष्ट शब्दों में कहा है—"**पन्ना समिक्खए धम्मतत्तं**"—बुद्धि की कसौटी पर कसकर देखें धर्म तत्व को। आपके अन्तर्मानस में जो यह शंका है कि जल की एक बूंद में असंख्यात जीव कैसे हो सकते हैं, मैं इसे सप्रमाण आपको आज से सातवें दिन बताऊँगा।

राजा मानसिंह नमस्कार कर लौट गये, किन्तु कहीं आचार्यश्री यहाँ से प्रस्थान न कर जायें अतः अपने एक सेवक को वहाँ पर नियुक्त कर दिया। उस समय आधुनिक विज्ञान इतना विकसित नहीं हुआ था और न ऐसे साधन ही थे जिससे सिद्ध किया जा सके। आचार्यश्री ने अपनी कमनीय कल्पना से चने की दाल जितनी जगह में एक कागज पर एक चित्र अंकित किया और वह चित्र जब सातवें दिन राजा मानसिंह उपस्थित हुआ तब उन्होंने वह उसे सामने रखते हुए कहा—जरा देखिए, इस चित्र में क्या अंकित है ? राजा मानसिंह ने गहराई से देखने का प्रयास किया किन्तु यह स्पष्ट नहीं हो रहा था कि उसमें क्या चोज है ? तब आचार्य प्रवर ने उस पन्ने पर लिखित दोहे पढ़े—वे दोहे इस प्रकार हैं—

पृथ्वी अप तेऊ पवन, पंचमी वणसई काय।
तिल जितनी मांहि कह्या, जीव असंख्य जिनराय ॥ १ ॥
कर्म शरीर इन्द्रियप्रजा, प्राण जोग उपयोग।
लेश्यादिक ऋद्धिवन्त को, लूटें अन्धा लोग ॥ २ ॥
जीव सताओ जु जुवा, अनघड नर कहे एम।
कृत्रिम वस्तु सूझे नहीं, जीव बताऊँ केम ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दाल चिणों की तेह में बाधत है कछु घाट।
शंका हो तो देख लो, हाथी एक सौ आट ।। ४ ।।
जीव जतन निर्मल चित्ते, किधौ जीव उद्धार।
एक कर्म भय आदि को, मेटे यह उपगार ।। ५ ।।

आचार्यश्री ने एक काँच के टुकड़े को विशेष औषध लगाकर तैयार किया था जो आइ-ग्लास की तरह था, उसे राजा मानसिंह को देते हुए कहा—आप इसकी सहायता से देखिए, इसमें क्या चित्र है ? राजा ने ज्यों ही देखा उनके आश्चर्य का पार न रहा। उस लघु स्थान में हाथी चित्रित थे, जिस पर लाल झूलें थीं। जब राजा ने गिना तो वे १०८ की संख्या में थे। आचार्यश्री ने कहा—

पशुओं में सबसे बड़ा हाथी है, और उसे मैंने चित्रित किया है। वे भी आपकी आँखों से नहीं दिखायी दिये तो जल की बूंद में असंख्यात जीव आपको किस प्रकार दिखायी दे सकते हैं ? राजा मानसिंह के पास उसका कोई उत्तर नहीं था। वह श्रद्धा से नत था। इसके हृतन्त्र के तार झनझना उठे कि वस्तुतः जैन श्रमण महान् हैं। जैन आगमों में कोई मिथ्या कल्पना नहीं है। जैन श्रमणाचार्य के प्रति वे अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने कहा—

काहू की आश राखे, काहू से न दीन भाखे,
करत प्रणाम ताको, राजा राणा जेबड़ा।
सीधी सी आरोगे रोटी, बैठा बात करे मोटी,
ओढ़ने को देखो जांके, धोला सा पछेवड़ा।
खमा खमा करें लोक, कदियन राखें शोक,
बाजे न मृदंग चंग, जग मांहि जे बड़ा।
कहे राजा मानसिंह, दिल में विचार देखो,
दुःखी तो सकल जन, सुखी जैन खेवड़ा।

आचार्यश्री को नमस्कार कर श्रद्धा के साथ राजा मानसिंह बिदा हुए। आचार्यश्री के सत्संग से राजा मानसिंह के जीवन में परिवर्तन हो गया और वे अब जैन श्रमणों का सम्मान करने लगे। जैन साहित्य के प्रति भी उनके मन में आस्था अंकुरित हो गयी।

आचार्य जीतमल जी महाराज ने प्रज्ञापना सूत्र के वनस्पति पद का सचित्र लेखन किया। जिन वनस्पतियों का उल्लेख टीकाकार ने वनस्पति-विशेष में किया उन वनस्पतियों के चित्र आपश्री ने बनाये और वे वनस्पतियाँ किन-किन रोगों में किस रूप में काम आती हैं और वनस्पतियों के परस्पर संयोग होने पर किस प्रकार सुवर्ण आदि निर्मित होते हैं आदि पर भी प्रकाश डाला।

अंगस्फुरण, पुरुष का कौन-सा शुभ है या कौन-सा अशुभ है, हाथ की रेखाएँ और उनमें कौन-से लक्षण अपेक्षित होते हैं, विजयपताका यन्त्र, ह्रींकार यन्त्र, सर्वतो भद्र यन्त्र तथा मन्त्र साहित्य, तन्त्र साहित्य पर आपने बहुत लिखा था। आपने सूक्ष्माक्षर में एक पन्ने पर दशवैकालिकसूत्र, वीर स्तुति (पुच्छिसुणं) और नमि पवज्जा का लेखन किया था। राजस्थान, मध्यप्रदेश में आपका मुख्य रूप से विचरण रहा और आपने जैन धर्म की विजय-वैजयन्ती फहरायी।

आपने अठत्तर वर्ष तक शुद्ध संयम का पालन किया। जीवन की सान्ध्य वेला में आपश्री कुछ दिनों तक जोधपुर विराजे। जैन साधना में समाधि मरण का वरण करने वाला व्यक्ति धन्य माना जाता है। संयम की आराधना करते हुए परम आह्लाद के साथ जो मृत्यु का वरण करता है वह जागृत मृत्यु है। जिनमें भेद-विज्ञान होता है, आत्मा और शरीर की भिन्नता का जिसे बोध हो जाता है, वह देह के प्रति आसक्त नहीं होता और न वह मृत्यु से ही भयभीत होता है। किन्तु वह तो मृत्यु को सहर्ष स्वीकार करता है। आचार्य प्रवर ने चतुर्विध संघ से क्षमायाचना की और सन्थारा ग्रहण किया। एक मास तक सन्थारा चलता रहा। दिन-प्रतिदिन आपके परिणाम उज्ज्वल और उज्ज्वल-तर होते गये। उस समय आपके सन्निकट योग्यतम शिष्य का अभाव था। आपने अपने एक शिष्य से गरम पानी मंगवाया और जो अत्यन्त श्रम से प्रज्ञापना सूत्र का वनस्पति पद सचित्र तैयार किया था उसका कहीं दुरुपयोग न हो जाय, अतः आपने उसे पानी में डालकर नष्ट कर दिया। उस समय जोधपुर के प्रसिद्ध श्रावक वैदनाथ जी ने आपश्री से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्ग में देव सभा तथा देवियों का नृत्य।

राजा मानसिंह जी ने आचार्य श्री जीतमल जी म० के समक्ष—जल की एक बूंद में असंख्य जीव कैसे ?
यह जिज्ञासा व्यक्त करने पर प्रमाण रूप में सातवें दिन यह चित्र तैयार किया जिसमें लाल झूले वाले १०८ हाथी हैं।
राजा देख कर आल्हादित हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टापद पक्षी—जो सभी पक्षियों में अधिक शक्ति सम्पन्न हैं। जन्मता हुआ बालक भी अनेक हाथियों को लेकर आकाश में उड़ जाता हैं।

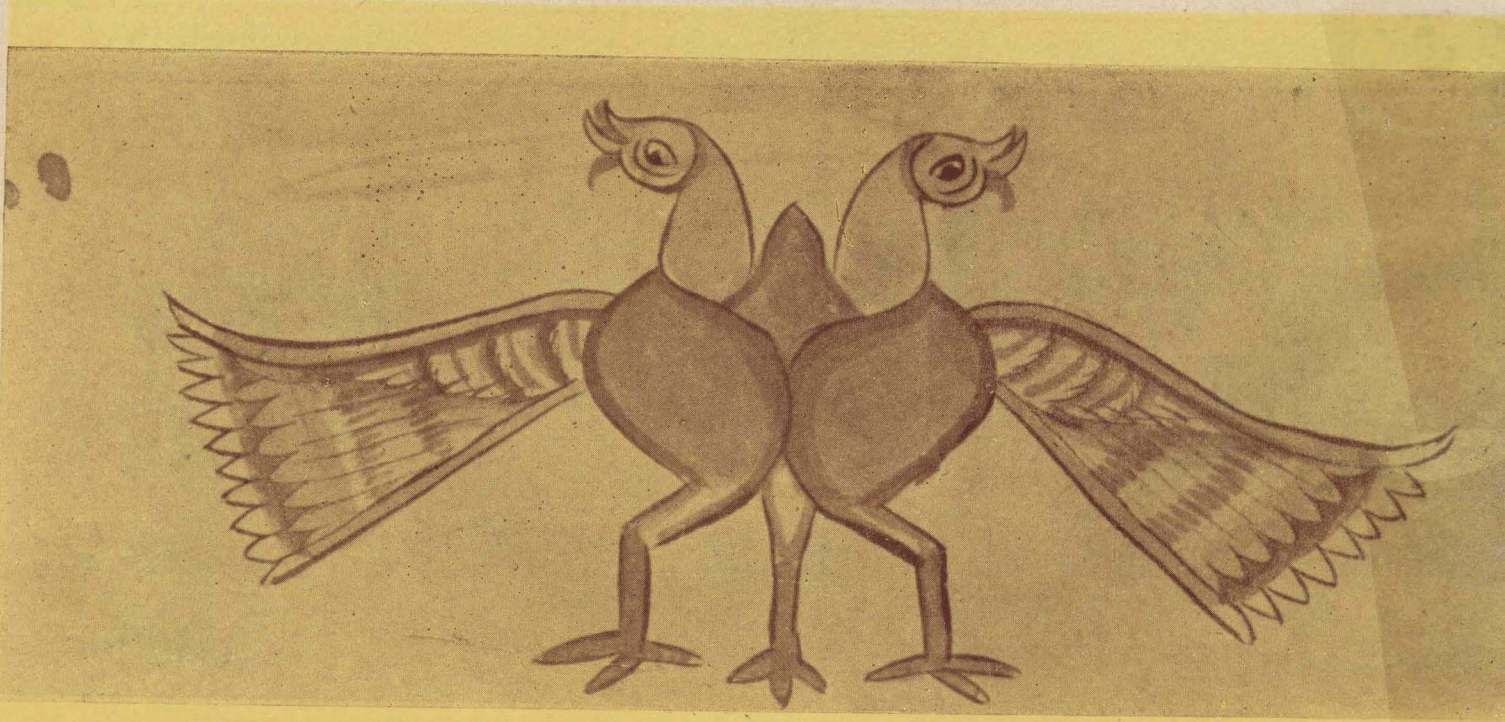

भारण्ड पक्षी का चित्र—भारण्ड पक्षी के अप्रमत्त जीवन की उपमा श्रमण जीवन के साथ दी जाती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सनम्र प्रार्थना कि भगवन् ! आप यह अनमोल वस्तु क्यों नष्ट कर रहे हैं, आपश्री ने उन्हें कहा—इन सबका सारांश मैंने एक पन्ने में लिख दिया है जो समर्थ विद्वान होगा वह उससे सब कुछ समझ जायेगा और शेष व्यक्ति इसका दुरुपयोग नहीं करेंगे। अन्त में ज्येष्ठ शुक्ला दशमी के दिन संवत् १९१३ में आपका स्वर्गवास हो गया।

आपश्री के वर्षावास की सूची प्राचीन पत्र के अनुसार इस प्रकार है :—

१. उदयपुर	२. चावर
३. जुनिया	४. बड़ोदरा
५. चित्तौड़गढ़	६. अजमेर
७. जोधपुर	८. पाली
९. बालोत्तरा	१०. सोजत
११. जालोर	१२. जोधपुर
१३. मेड़ता	१४. उदयपुर
१५. पाली	१६. सोजत
१७. विशलपुर	१८. बीकानेर
१९. बघेरा	२०. बालोत्तरा
२१. जोधपुर	२२. जोधपुर
२३. रूपनगर	२४. जोधपुर
२५. बघेरा	२६. समदडी
२७. जोधपुर	२८. जालोर
२९. पाली	३०. जोधपुर
३१. बालोत्तरा	३२. नागौर
३३. जोधपुर	३४. पाली
३५. जयपुर	३६. जोधपुर
३७. कोटा	३८. बिकानेर
३९. जोधपुर	४०. बालोत्तरा
४१. जालोर	४२. उदयपुर
४३. जोधपुर	४४. कुचामण
४५. किशनगढ़	४६. जोधपुर
४७. जोधपुर	४८. अजमेर
४९. अजमेर	५०. जोधपुर
५१. सोजत	५२. अजमेर
५३. जोधपुर	५४. किशनगढ़
५५. उदयपुर	५६. जोधपुर
५७. जोधपुर	५८. अजमेर
५९. जोधपुर	६०. पाली
६१. अजमेर	६२. जोधपुर
६३. पाली	६४. जोधपुर
६५. जोधपुर	६६. जोधपुर
६७. अजमेर	६८. अजमेर
६९. जोधपुर	७०. जोधपुर
७१. जोधपुर	७२. पाली
७३. जोधपुर	७४. जोधपुर
७५. चौपासनी	७६. जोधपुर
७७. जोधपुर	७८. जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण भगवान महावीर स्वामी के राजगीर नगर में १४ चातुर्मास हुए तो आपश्री के जोधपुर ३० चातुर्मास हुए। उसका मुख्य कारण कुछ सन्त वृद्धावस्था के कारण वहाँ पर अवस्थित थे तो उनकी सेवा हेतु आपश्री को वहाँ पर चातुर्मास करना आवश्यक हो गये थे।

आचार्यश्री जीतमलजी महाराज की शिष्य परम्परा

आचार्यश्री जीतमलजी महाराज एक महान् प्रतिभा-सम्पन्न आचार्य थे। उनके कुल कितने शिष्य हुए ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। पर यह सत्य है कि उनके दो मुख्य शिष्य थे—प्रथम **किशनचन्द जी महाराज** और द्वितीय **ज्ञानमलजी महाराज**। ज्ञानमलजी महाराज और उनकी परम्परा का परिचय विस्तार के साथ मैंने अगले पृष्ठों में दिया है। किशनचन्द जी महाराज एक प्रतिभासम्पन्न सन्त रत्न थे। आपका जन्म अजमेर जिले के मनोहर गाँव में वि० सं० १८४३ में हुआ। आपके पिता का नाम प्यारेलाल जी और माता का नाम सुशीलादेवी था। जाति से आप ओसवाल थे। आपने वि० सं० १८५३ में आचार्यश्री के पास दीक्षा ग्रहण की। आपको आगम साहित्य, स्तोक साहित्य का अच्छा परिज्ञान था। आपके हाथ के लिखे हुए पन्ने जोधपुर के अमर जैन ज्ञान भण्डार में आज भी सुरक्षित हैं। उनमें मुख्य रूप से आगम, थोकड़े व रास, भजनादि साहित्य है।

वि० सं० १९०८ में आचार्यश्री जीतमलजी महाराज के सानिध्य में ही आपश्री का स्वर्गवास हुआ। किशनचन्दजी महाराज के शिष्य **हुकमचन्दजी महाराज** थे। आपकी जन्मस्थली जोधपुर थी। वि० सं० १८८२ में आपका जन्म हुआ। आपके पिता का नाम नथमलजी तथा माता का नाम राजीबाई था और वे स्वर्णकार थे। आपके गृहस्थाश्रम का नाम हीराचन्द था। आपश्री ने वि० सं० १८९८ में किशनचन्द जी महाराज साहब के शिष्यत्व को ग्रहण किया। आप कवि भी थे। आपकी कुछ लिखी हुई कविताएँ जोधपुर के अमर जैन ज्ञान भण्डार में प्राप्त होती हैं और बहुत-सी कविता साहित्य जो सन्तों के पास में था वह नष्ट हो गया। आपका आगम साहित्य का अध्ययन बहुत ही अच्छा था। गणित विद्या के विशेषज्ञ थे। चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति के रहस्यों के ज्ञाता थे। आपके मुख्य चातुर्मास जोधपुर, पाली, जालोर, जूठा, हरसोल, रायपुर, सालावास, बड़ और समदड़ी में हुए थे। सं० १९४० के भादवा वदी दूज को चार दिन के संथारे के पश्चात् जोधपुर में आपका स्वर्गवास हुआ। आपश्री के रामकिशनजी महाराज मुख्य शिष्य थे। आपकी जन्मस्थली जोधपुर थी। स० १९११ में भादवा कृष्ण चौदस मंगलवार को आपका जन्म हुआ। आपके पिता का नाम गंगारामजी और माता का नाम कुन्दन कुँवर था। गृहस्थाश्रम में आपका नाम मिट्ठालाल था। वि० सं० १९२५ के पौष वदी ११ को गुरुवार बडु ग्राम में आपने दीक्षा ग्रहण की। आपकी लिपि बड़ी सुन्दर थी। आपने पालनपुर, सिद्धपुर, पाटन, सूरत, अहमदाबाद, खम्भात और मौर्वी आदि महागुजरात के क्षेत्रों में विचरण किया। आपके राजस्थान में जोधपुर, सोजत, पाली, समदड़ी, जालोर, सिवाना खण्डप, हरसोल, जूठा, रायपुर, बडु, बोरावल, कल्याणपुर, दुंदाडा, बालोत्तरा, कर्मावस प्रभृति क्षेत्रों में आपका मुख्य रूप से विहार क्षेत्र और वर्षावास हुए। वि० सं० १९६० ज्येष्ठ वदी १४ को संथारा जोधपुर में आपका स्वर्गवास हुआ।

श्री रामकिशनजी महाराज के शिष्य-रत्न थे, नारायणचन्दजी महाराज। आपका जन्म बाडमेर जिले के सणदरी ग्राम में हुआ। आपके पिताश्री का नाम चेलाजी और माता का नाम राजाजी था। वि० सं० १९५२ पौष कृष्ण १४ के दिन आपका जन्म हुआ। जब आपकी उम्र ५ वर्ष की थी, आपके पिताश्री का देहान्त हो गया, तब आपकी मातेश्वरी अपने पितृगृह थोब ग्राम में रहने लगी, वहीं पर आचार्यश्री अमरसिंहजी महाराज की सम्प्रदाय की आनन्द कुंवरजी ठाणा ९ वहाँ पधारीं। उनके उपदेश से माता और पुत्र दोनों को वैराग्य भावना उत्पन्न हुई और आत्मार्थी श्री ज्येष्ठमलजी महाराज के सन्निकट आपने मातेश्वरी के साथ सं० १९६७ में माघ पूर्णिमा के दिन दीक्षा ग्रहण की। ज्येष्ठमलजी महाराज ने आपको रामकिशनजी महाराज का शिष्य घोषित किया और आपश्री ने उन्हीं के नेतृत्व में रहकर आगम साहित्य का व स्थोक साहित्य का अच्छा अभ्यास किया। आपकी लिपि बड़ी सुन्दर थी। आपकी प्रवचन-कला मधुर, सरस व चित्ताकर्षक थी। आपश्री के दो शिष्य हुए—प्रथम शिष्य का नाम **मुलतानमलजी महाराज** था जिनकी जन्मस्थली बाड़मेर जिले के वागावास थी। आपके पिता का नाम दानमलजी और माता का नाम नैनीबाई था। सं० १९५७ में आपका जन्म हुआ। आपकी बुद्धि तीक्ष्ण थी। आपने वि० सं० १९७० में समदडी में दीक्षा ग्रहण की। वि० सं० १९७५ में आपका स्वर्गवास हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारायणचन्दजी महाराज के दूसरे शिष्य **प्रतापमलजी महाराज** थे। आपका जन्म सं० १९६७ में हुआ। आप गृहस्थाश्रम में जाट परिवार के थे। आपका नाम रामलालजी था। उपाध्याय पुष्कर मुनिजी के साथ सं० १९८१ ज्येष्ठ शुक्ला १० को जालोर में दीक्षा हुई और आपका नाम मुनिश्री प्रतापमलजी महाराज रखा गया। आप बहुत ही सेवाभावी सन्तरत्न थे। आपने अपने गुरुवर्य नारायणचन्दजी महाराज की अत्यधिक सेवा की। नारायणचन्दजी महाराज का दिनांक १८-९-१९५४ के आसोज सुदी ५ शुक्रवार को दुन्दाडा ग्राम में संथारे से स्वर्गवास हुआ और स्वामी नारायणचन्दजी महाराज के स्वर्गवास के चार महीने के पश्चात् प्रतापमलजी महाराज का जोधपुर में स्वर्गवास हुआ। उनके कोई शिष्य नहीं थे। इस प्रकार किशनचन्दजी महाराज की पद-परम्परा रही।

ज्योतिर्धर आचार्यश्री जीतमलजी महाराज का व्यक्तित्व बहुत ही तेजस्वी था और कृतित्व अनूठा था। आप में वे सभी सद्गुण थे जो एक महापुरुष में अपेक्षित होते हैं। आपकी आकृति में बिजली-सी चमक थी। आपकी आँखों से छलकता हुआ वात्सल्य रस का स्रोत दर्शक को आनन्दविभोर कर देता था। आपश्री के शासन काल में सम्प्रदाय की हर दृष्टि से काफी अभिवृद्धि हुई। आपके ग्रन्थ, आपकी चित्रकला आपके ज्वलन्त कीर्तिस्तम्भ के रूप में आज भी विद्यमान हैं।

सन्दर्भ एवं सन्दर्भ-स्थल

१ "जात्यैवेते परहितविधौ साधवो बद्धकक्षाः"।
२ "विविह कुलुप्पण्णा साहवो कप्परुक्खा"। —**नन्दी चूर्णि २/१६**
३ "देवता बान्धवा सन्तः, सन्त आत्माऽहमेव च"। —**श्रीमद् भागवत ११/२६/३४**
४ 'साधु जी महिमा वेद न जाने, जेता सुने तेता बखाने।
"साधु की शोभा का नहिं अन्त, साधु की शोभा सदा बे-अन्त ।।"
५ 'महप्पसाया इसिणो हवंती' —**उत्तराध्ययन ११**
६ 'चन्दो इव सोमलेसा'
७ सागरो इव गंभीरा। —औपपातिक सूत्र-समवसरण अधिकार
८ "वासी चंदणकप्पो य असणे अणसणे तहा" —**उत्तराध्ययन १९/९२**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org